विषय- योग

इकाई- 1

योग की परिभाषा

योग के विभिन्न ऋषियों एवं विद्वानों ने चेतना के विभिन्न आयामों में पहुँचकर योग के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कई परिभाषाएँ दी हैं-

⇒ महर्षि पतंजलि द्वारा रचित 'पातंजल योग सूत्र' के अनुसार

"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः। (1/2)

अर्थात- चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।

⇒ श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार -

गीता में विभिन्न संदर्भों में योग की भिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं; कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं-

"समत्वं योग उच्यते"। (2/48)

अर्थात - लाभ-हानि, जय-पराजय तथा सिद्धि-असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर कर्तव्य कर्मों को करना ही योग है।

"योगः कर्मसु कौशलम्"। (2/50)

अर्थात - समबुद्धि युक्त होकर कर्मों को करना ही कर्मों में कुशलता है और कर्मों में कुशलता ही योग है।

⇒ वेदान्त के अनुसार -

"जीव और आत्मा के मिलन की संज्ञा ही योग है।

⇒ शिव संहिता के अनुसार -

" शिव और शक्ति का मिलन ही योग है।

⇒ परमहंस योगानंद जी के अनुसार -

योग के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ईश्वर के साथ एक होना ही योग है, क्रिया योग आज के जमाने में मनुष्य को उपलब्ध सबसे प्रभावशाली तकनीक है जो हमें ईश्वर के साथ जोड़ती है।

⇒ स्वामी विवेकानन्द के अनुसार -
"योग का अर्थ है मनुष्य और ईश्वर को जोड़ने की पद्धति।"

⇒ महर्षि अरविन्द के अनुसार -
"अपने स्वरूप को जान लेना अर्थात अपने आप से जुड़ना ही योग है।"

योग की व्याख्या

योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के "युज" धातु से हुई है जिसका अर्थ होता है जुड़ना या एक होना। इस एकीकरण का अर्थ है जीवात्मा तथा परमात्मा का एकीकरण। जीवात्मा का सामर्थ्य सीमित है तथा परमात्मा का असीम। एक सरोवर है तो दूसरा चेतना शक्ति का महासागर।

व्यवहारिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो योग एक जीवन पद्धति है, जो हमारी शक्ति एवं चेतना के विकास और जागृति में सहायक है। यही एकमात्र विधा है जो मानव का सार्वांगिन विकास कर सकती है। इसमें बताई गयी विधियों के अभ्यास से हम शांति; संतुलन और सामंजस्य प्राप्त कर सकते है।

मानव अपने शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, बौद्धिक, भावनात्मक आदि तनावों में ही उलझा रहता है। जिस कारण वह अपने आन्तरिक क्षमता को पहचान नहीं पाता; जिससे आन्तरिक क्षमता का पूर्णरूपेण विकास नही हो पाता। परन्तु योग के माध्यम से हम अपने आन्तरिक स्वभाव या प्रकृति को जानने समझने तथा अनुभव करने की क्षमता विकसित कर सकते हैं। जिससे परमात्मा से तादात्मयता का ज्ञान प्राप्त किया जा सके।

अतः योग विद्या के द्वारा मानव संसार में रहकर भी सांसारिकता से लिप्त नही होता। व्यवहारिक स्तर पर योग शरीर, मन और भावनाओं में संतुलन और सामंजस्य स्थापित करने का एक साधन है। आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, षट्कर्म और ध्यान के अभ्यास से यह संतुलन पाया जा सकता है तथा उच्चतर सत्ता के साथ एकत्व स्थापित हो, उसके पूर्व यह अनिवार्य भी है।

योग विज्ञान का प्रभाव व्यक्तित्व के सबसे बाहरी पक्ष - शरीर से प्रारम्भ होता है, जो अधिकतर लोगों के लिए एक व्यवहारिक और सुपरिचित आरंभिक बिन्दु है। इस स्तर पर असंतुलन का अनुभव होने से अंगों, पेशियों और तंत्रिकाओं के कार्यकलापों में सामंजस्य नहीं रह जाता, वे एक दूसरे के प्रतिकूल कार्य करने लग जाते हैं। उदाहरणार्थ, अंतःस्रावी प्रणाली के अनियमित होने से तन्त्रिका-तन्त्र की कार्यकुशलता इतनी कम हो सकती है कि रोग होने की सम्भावना हो जाती है। योग का लक्ष्य शरीर के विविध कार्यकलापों के बीच पूर्ण सामंजस्य स्थापित करना है ताकि वे सम्पूर्ण शरीर के हित में कार्य करें। स्थूल शरीर से प्रारम्भ कर योग मानसिक और भावनात्मक स्तर की ओर अग्रसर होता है। अनेक लोग दैनिक जीवन के दबावों और आपसी व्यवहारों से उत्पन्न भय और मानसिक रोगों से पिड़ित होते हैं। योग समस्त व्याधियों (रोगों) को निर्मूल (जड़ से) समाप्त नहीं कर सकता, परन्तु उनसे लड़ने की प्रमाणिक विधि प्रदान कर सकता है।

योग की कई शाखाएँ हैं - राजयोग, हठयोग, क्रियायोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, मन्त्रयोग, कुण्डलिनी योग और लय योग आदि। हर व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व एवं निजी आवश्यकता के अनुरूप इनमें से स्वयं के लिए उपयुक्त योग का चयन कर लेना चाहिए और अभ्यास से लाभ लेना चाहिए।

योग का महत्व

अगर योग के महत्व के बारे में बात करें तो मानव जीवन में योग का विशेष महत्व है, परन्तु प्राचीन समय में योग को काफी दुर्लभ माना जाता था। यह भी माना जाता था कि योग साधना घर को त्यागकर वन में जाकर करने की साधना है। केवल ऋषि मुनि ही इसे कर सकते हैं, परन्तु आधुनिक युग में देखा जाए तो योग विद्या भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में शोध कार्यों के आधार पर अत्यधिक प्रचलित हो रहा है। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में योग महत्व पूर्ण है।

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में तरह-तरह की समस्याएँ निर्मित हो रही है, जिसका समाधान योग के द्वारा संभव है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी योग काफी महत्वपूर्ण है।

गरुड़ पुराण में भी कहा गया है कि- विभिन्न प्रकार के संसारिक कष्ट, पीड़ा एवं दुखों से ग्रसित व्यक्तियों के लिए योग ही एक मात्र परम औषधि है।

मानव जीवन में मुख्यतः दो रूपों में (एक व्यक्तिगत तथा दूसरा सामाजिक रूप में) योग महत्वपूर्ण है। व्यक्तिगत रूप में शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक विकास हेतु योग विशेष रूप से महत्व रखता है।

सामाजिक रूप में देखें तो इसकी सीमाएँ अनन्त है, परन्तु मुख्य रूप से योग का महत्व चिकित्सा, शिक्षा, पर्यटन, आर्थिक, नैतिक, खेलकूद, औद्योगिक अनुसंधान आदि क्षेत्र में देखा जा सकता है।

योगी का व्यक्तित्व एवं वेशभूषा

योगी का व्यक्तित्व

आज के आधुनिक युग में व्यक्तित्व का अर्थ मनोवैज्ञानिकों ने व्यवहार को लिया है अतः किसी भी व्यक्ति का जीवन की अलग-अलग परिस्थितियों में किए गए व्यवहार ही उस व्यक्ति का व्यक्तित्व कहलाता है। हमारा विषय है योगी का व्यक्तित्व अर्थात योगी द्वारा अलग-अलग जीवन की परिस्थितियों में किए गए व्यवहार।

कर्मयोग की दृष्टि से योगी का व्यक्तित्व

कर्मयोग की दृष्टि से एक कर्मयोगी का व्यक्तित्व कैसा होना चाहिए हम निम्नलिखित बिंदुओं से स्पष्ट करेंगे-

* योगी का हृदय विशाल होता है। उनमें उदार भावना, सज्जनता, उत्कृष्टता और निःस्वार्थ की भावना कूट-कूट कर भरी होती है।

* वह काम, क्रोध, लोभ और मद आदि दुर्गुणों से रहित होता है।

* उसका स्वभाव मिलनसार तथा समाजसेवी होता है। उसे जाति, धर्म या वर्ण के विचार बिना हर एक व्यक्ति के साथ मिलना चाहिए।

* योगी में सहनशीलता, सहानुभूति, विश्व-प्रेम, दया और सबमें मिल जाने की सामर्थ्य होनी चाहिए। उसमें दूसरों के स्वभाव और रीति से संयोग रखने की क्षमता, उपस्थित बुद्धि, मन शान्त और सम होना चाहिए।

* योगी को दूसरे की उन्नति में प्रसन्न और इन्द्रियों पर संयम होना चाहिए।

* योगी निःस्वार्थ सेवा से अपनी चित्त की शुद्धि कर लेता है। देश-सेवा, समाज-सेवा, दरिद्र-सेवा, मातृ-सेवा, पितृ-सेवा, गुरु सेवा ये सभी योगी के व्यक्तित्व के लक्षण हैं।

* योगी अहंकार हीन होकर कर्मफल की आशा न रखता हुआ कार्य करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि योग की अनेक धाराएँ विश्व की प्राचीनतम संस्कृति, भारती संस्कृति में है जो समस्त विश्व, मानवता के कल्याण हेतु समर्पित रही हैं परन्तु इन समस्त विधायों विद्याओं में सर्वाधिक व्यवहारिक एवं सरल महत्वपूर्ण विद्या कर्मयोग की साधना ही रही है। कर्म और उनके फलों में आसक्ति से व्यक्ति कर्म बंधनों में बंधता है। कार्य में बाधा उत्पन्न होने से उसे कष्ट होता है क्योंकि उसके फलों में आसक्ति है परन्तु योगी जब कर्म फलों में आसक्ति त्याग देता है तब वह आसक्ति रहित हो जाता है। योगी को सफलता और असफलता से कोई लगाव नहीं रहता है। कामना से रहित होकर कर्म करने से मन की कामना शून्य हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप संसार से आसक्ति नष्ट हो जाती है तथा तब कर्म संस्कारों की उत्पत्ति नहीं करते, जिसके परिणाम स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है।

योगी की वेशभूषा

वेशभूषा का अर्थ होता है पहनावा या पोशाक। एक योगी की वेशभूषा अगर योगी सन्यास की परम्परा का निर्वहन कर रहा हो तो सन्यास परम्परा के अनुसार उसे गेरूआ वस्त्र धारण करना चाहिए। ~~जो~~ ऐसे वस्त्र जो पहनने में आरामदायक अर्थात ढीली वस्त्र हो और धोती और कुर्ता हो, जिससे उसे अपने दैनिक जीवन चर्या में किसी भी कार्य को करने में कोई कठिनाई हो; वस्त्र ढीले-ढाले हों, गेरूआ रंग त्याग और बलिदान का द्योतक है जो कि एक योगी में ये गुण होने चाहिए। गेरूआ वस्त्र से योगी में स्वभाविक रूप से त्याग बलिदान और समता भाव उत्पन्न होता है जो अपने मार्ग मे आगे बढ़ने में सहायक होता है। योगी के वस्त्र ढीले-ढाले हों कसा हुआ (tight) ना हो; क्योंकि कसे हुए वस्त्र से जीवन-चर्या के काम मे बाधा उत्पन्न होता है हम ठीक ढंग से लम्बे समय तक बैठ नही सकते, साथ ही इसका प्रभाव योगी के मन तथा भावना पर भी नकारात्मक पड़ता है योगी गृहस्थ भी हो सकता है अगर गृहस्थ हैं तो गेरूआ वस्त्र पहनने में असहजता होने पर उन्हे सदैव प्रयास करना चाहिए कि ढीले-ढाले व सभी के वस्त्र पहने जैसे- कुर्ता-पजामा, धोति आदि। योग की अलग-अलग परम्परा में वस्त्र पहनने के विधान भी हैं जो योगी जिस परम्परा का निर्वहन कर रहें हों उसके अनुसार उसकी वेशभूषा होनी चाहिए।

इकाई-2

योग के प्रकार

योग की अनेक पद्धतियां हैं, जिन्हे योग के प्रकार अथवा प्रक्रियाएँ भी कहा जा सकता है। योग के जितने भी प्रकार हैं वे अलग-अलग अपनी विशेषताएँ रखते हैं। परन्तु जब एक साधक साधना की दृष्टि से इसे अपनाता है- तो देखा जाता है कि योग की ये सारी प्रक्रियाएँ योग के परम लक्ष्य सच्चिदानन्द को प्राप्त करने का साधन है। योग की विभिन्न पद्धतियां इस प्रकार है – कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, ज्ञानयोग, हठयोग, मंत्रयोग, तंत्रयोग, लययोग, नादयोग, क्रियायोग, ध्यानयोग, कुण्डलिनी योग आदि।

ज्ञानयोग

ज्ञानयोग को विश्लेषण की पद्धति के रूप में जाना जाता है। ज्ञान 'विद्' धातु से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है - जानना अर्थात अनुभव करना। ज्ञान पर आधारित योग साधना को ज्ञानयोग कहा जाता है। यह योग का दार्शनिक तथा बौद्धिक पक्ष है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार- जो ज्ञानी बनना चाहते है सर्वप्रथम उन्हे भय से मुक्त होना चाहिए; जब तक किसी बात को पूर्ण रूपेण न जान लें, उसपर विश्वास नही करना चाहिए। ज्ञानी का ध्यान दो प्रकार का होता है - एक तो हर एक ऐसी वस्तु से ~~ध्यान~~ विचार हटाना और उसे अस्विकार करना जो सत्य नहीं है तथा दूसरा केवल उसी पर दृढ रहना जो वास्तव में सत्य है।

ज्ञानयोग के साधन

ज्ञानयोग के मुख्यतः दो प्रकार के साधन है - 1. बहिरंग साधन 2. अंतरंग साधन

1. बहिरंग साधन

बहिरंग साधन के चार प्रकार के हैं-

1. विवेक
2. वैराग्य
3. षट्सम्पत्ति → 1. शम 2. दम 3. उपरति 4. तितिक्षा 5. श्रद्धा 6. समाधान
4. मुमुक्षुत्व

2. अंतरंग साधन

अंतरंग साधन तीन प्रकार की होती है-

1. श्रवण
2. मनन
3. निदिध्यासन

कर्मयोग

कर्म शब्द 'कृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है- करना अतः चेतना के विकास हेतु जो कुछ किया जाय वह कर्मयोग है। स्वामी विवेकानन्द ने निःस्वार्थ भाव से किये गए कर्म को कर्मयोग माना है। यहां निःस्वार्थ का तात्पर्य निशुद्ध चेतना, पवित्र भाव, शुद्ध विचार आदि से है। उन्होंने आत्मतत्व से हटकर परमात्मतत्व की बात कही है।

कर्मयोग में कर्मयोगी अपने समस्त कर्मों उसके फलों को भगवान के श्रीचरणों में अर्पण कर देता है। ईश्वर में निष्ठा रखकर आसक्ति को दूर करके सफलता या निष्फलता में समान रूप से रहकर कर्म करते रहना कर्मयोग कहलाता है। चेतना के विकास हेतु कर्मयोग प्रेम, विशवास, श्रद्धा, समर्पण और सेवा है। यह मनुष्य के भावना के विकास का मूलाधार भी है। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार—

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।
(श्रीमद्भगवद्गीता 2/50)

अर्थात समबुद्धि युक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात उससे मुक्त हो जाता है। इसलिए तू समत्व रूप (समता) में अब योग में लग जा यह समत्व रूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात कर्म बंधन से छुटने का उपाय है। इस प्रकार आसक्ति छोड़कर कर्म करने को गीता में इस प्रकार कहा गया है-

कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूमा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 2।47)

अर्थात- तेरा कर्म करने पर अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के आसक्ति मत रख तथा कर्मों को न करने में भी आसक्त न हो। यहां पर इच्छा का नहीं आसक्ति का निषेध किया गया है। परिणाम की इच्छा के बिना तो कोई कार्य किया ही नहीं जा सकता। इसलिए स्वभाविक इच्छा तो होगी और आवश्यक भी है निषेध उस आसक्ति का है, जिसके लोभ से कार्य प्रणाली में गुणवत्ता खराब होती है और दोष आ जाते हैं।

कर्मयोग का वास्तविक अर्थ है किसी भी काम को पूरी कुशलता के साथ अर्थात अपने पूरे सामर्थ्य के साथ कर्तापन का अभिमान छोड़कर किया जाय और उसके फल में निर्लिप्त अथवा अनासक्त रहा जाय। यही कर्मयोग है।

भक्तियोग

भक्ति शब्द 'भज सेवायाम' धातु से बना है जिसका अर्थ है सेवा, पूजा, उपासना आदि। भावना के आधार पर अपने भाव का विस्तार करना ही भक्ति योग है स्वामी विवेकानन्द के अनुसार सच्ची व निष्कपट भाव से ईश्वर की खोज करना ही भक्ति योग है। स्वामी जी कहते हैं कि भक्ति किसी वस्तु का संहार नहीं करती है, वह हमें ज्ञान देती है कि जो शक्तियां दी गयी है वह सार्थक है तथा यही हमारी मुक्ति का मार्ग है।

भक्तियोग के मूलतत्व

→ भक्तियोग मूलतः श्रद्धा, विश्वास, प्रेम एवं समर्पण का योग है। भक्ति तत्व बहुत गहनता लिये हुये है। जो समग्र जीवन

को परिवर्तित कर सकता है भक्तियोग के मूल तत्व मुख्य रूप से शास्त्रों में निम्न है–

1. प्रेम, 2. श्रद्धा -विश्वास, 3. समर्पण

भक्त के प्रकार

गीता के अनुसार भक्त के चार प्रकार है–

1. आर्त – सुख-सम्पत्ति के नष्ट होने पर, उसकी प्राप्ति के लिए भक्ति करना
2. अर्थार्थी – अर्थ प्राप्ति के लिए भक्ति करना
3. जिज्ञासु – ब्रह्म को जानने की इच्छा से भक्ति करना
4. ज्ञानी – जो सब जानते हुए भी ईश्वर भक्ति में मग्न रहते हैं।

भक्ति के प्रकार

भक्ति दो प्रकार की होती है

- भक्ति
  - परा भक्ति
  - अपराभक्ति
    - वैधी/नवधा भक्ति
      - श्रवण (1)
      - कीर्तन (2)
      - स्मरण (3)
      - पादसेवन (4)
      - अर्चन (5)
      - वन्दन (6)
      - दास्य (7)
      - साख्यभक्ति (8)
      - आत्मनिवेदन भक्ति (9)
    - रागात्मिका भक्ति

Rajesh kumar YSM

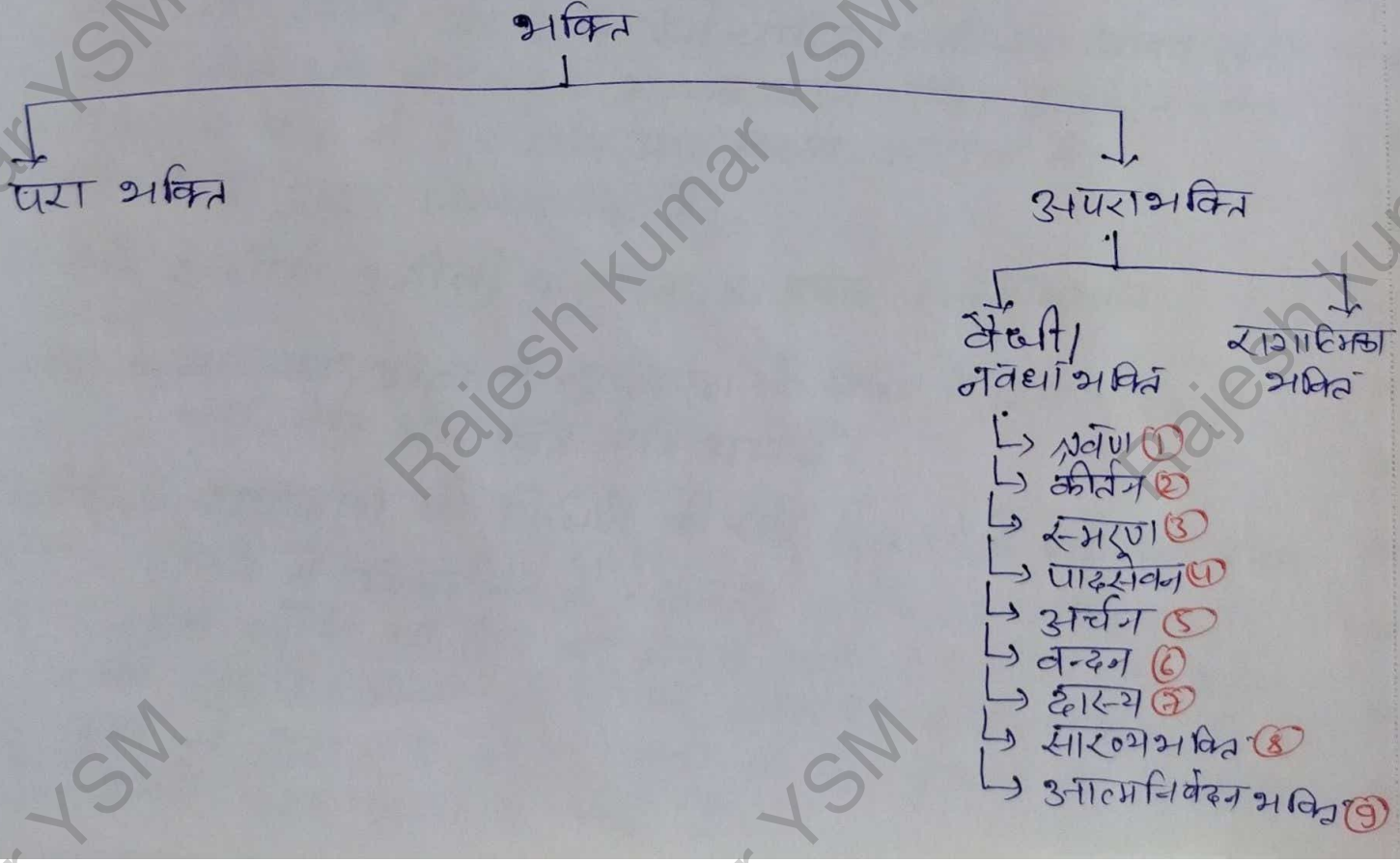

षट्कर्म परिचय

प्राचीन योग उपनिषदों में हठयोग का वर्णन षट्कर्मों के रूप में किया गया है। यह एक सुव्यवस्थित एवं यथार्थ विज्ञान है। षट्कर्मों में शुद्धिकरण के छः अभ्यास समूह आते हैं। हठयोग की ओर सोच ही षट्कर्मों उद्देश्य है; दो मुख्य प्राण प्रवाहों, इड़ा (बायां नाड़ी) एवं पिंगला (दायां नाड़ी) के बीच सामंजस्य स्थापित कर इनके द्वारा शारीरिक एवं मानसिक शुद्धिकरण एवं संतुलन प्राप्त करना।

षट्कर्मों का उपयोग शरीर में त्रिदोषों- वात- पित-कफ को सन्तुलित करने के लिए किया जाता है। आयुर्वेद एवं हठयोग, दोनों के अनुसार इन त्रिदोषों के बीच असंतुलन होने से रोग उत्पन्न होता है। शरीर को विषाक्त तत्वों से मुक्त करने एवं अध्यात्म मार्ग पर सुरक्षित रूप से सफलतापूर्वक आगे बढ़ने के लिए भी प्राणायाम एवं उच्च योगाभ्यासों के पूर्व इन अभ्यासों का उपयोग किया जाता है।

इन शक्तिशाली विधियों को पुस्तकों से नहीं सिखना चाहिए और न ही अनुभवहीन लोगों को इनकी शिक्षा देनी चाहिए। परम्परा के अनुसार गुरु से इस ज्ञान को प्राप्त कर ही दुसरों को इसका प्रशिक्षण देना चाहिए। व्यक्तिगत आवश्यकता के अनुरूप कैसे और कब इनका अभ्यास करना चाहिए, इसके सम्बन्ध में व्यक्तिगत रूप से मार्गदर्शन प्राप्त करना अनिवार्य है।

षट्कर्म के छः प्रकार निम्नलिखित हैं:-

1. नेति 2. धौति 3. नौली 4. बस्ति 5. त्राटक 6. कपालभाति

1. नेति - नासिका-प्रदेश के शुद्धिकरण की विधि है। इस समूह में जल नेति और सूत्र नेति आते हैं।

2. धौति - शुद्धिकरण की विधियों की एक श्रृंखला है जो मुख्य तीन भागों में विभाजित है - अन्तर धौति (आन्तरिक शुद्धि), शीर्ष धौति या सिर की सफाई और हृद धौति (वक्ष प्रदेश) की सफाई। अन्तर धौति या आन्तरिक शुद्धि की विधियों से मुख से गुदा तक आहार नली की पूरी सफाई की जाती है। इनमें चार अभ्यास आते हैं:-

(क) शंख प्रक्षालन (वारिसार-धौति) और लघु शंख प्रक्षालन (आंतों की सफाई)

(ख) अग्निसार क्रिया (वह्निसार धौति), जठराग्नि वर्धक

(ग) कुंजल (वमन-धौति), आमाशय की जल द्वारा सफाई

(घ) वातसार धौति; आंतों की वायु द्वारा सफाई।

इन अभ्यासों के लिए विशेषज्ञ से मार्गदर्शन प्राप्त करने की आवश्यकता होती है।

3. नौलि - उदर की अंगों की मालिश करने और उन्हें मजबूत करने की पद्धति।

4. बस्ति - बड़ी आंत को स्वच्छ एवं पुष्ट बनाने की विधियां

5. त्राटक - किसी बिन्दु या वस्तु को एकटक देखने का अभ्यास, जो एकाग्रता की शक्ति विकसित करता है।

6. कपालभाति - मस्तिष्क के अग्र भाग को शुद्ध करने की श्वसन-विधि

यद्यपि षट्कर्म केवल छः हैं, किन्तु प्रत्येक समूह के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के अभ्यास आते हैं।

Rajesh kumar YSM